तित्थयर

वर्ष २० : अंक २ जुन १९९६

जैन भवन

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष २० : अंक २

जून १९९६

□

संपादन

राजकुमारी बेगानी

लता बोथरा

□

आजीवन : एक हजार रुपये

वार्षिक शुल्क : पचपन रुपये

प्रस्तुत अंक : पांच रुपये

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५, कलाकार स्ट्रीट,

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

अनुप्रिया प्रिन्टर्स

६ ए, बड़ौदा ठाकुर लेन

कलकत्ता-७

सूची

हिन्दू एवं जैन धर्म के परिप्रेक्ष्य में

सती-प्रथा ३७

चैत्रगच्छ का संक्षिप्त इतिहास ४४

श्रावक-जीवन ५०

महाराजा श्रेणिक ६०

संकलन ६५

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या ६६

जिसने दुःख को समाप्त कर दिया है उसे मोह नहीं है, जिसने मोह को मिटा दिया है उसे तृष्णा नहीं है। जिसने तृष्णा का नाश कर दिया है उसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं है, वह अकिंचन है।

NAHAR

Interior Decorator

5/1, Acharya Jagadish Chandra Bose Road

CALCUTTA-700 020

Phone : 247-6874 Resi. : 244-3810

हिन्दू एवं जैन धर्म के परिप्रेक्ष्य में सती-प्रथा

(श्री रञ्जन कुमार)

सती का अर्थ होता है विधवा का अपने पति की चिता में जीवित जल मरना। इसे सहमरण, सहगमण, अनुमरण, अन्वारोहन आदि नामों से जाना जाता है। इसमें दो स्थिति उत्पन्न हो सकती है। पहली स्थिति में विधवा को उसकी इच्छा के विरुद्ध जलने पर विवश किया जाता हो तथा दूसरी स्थिति में विधवा स्वयं अपनी इच्छा से सती होना चाहती हो। प्राचीन काल में इसे एक साधारण घटना माना जाता था। वर्त्तमान में इस प्रथा पर पूर्ण रूपेण प्रतिबन्ध लगा दिया गया है।

चूंकि सती प्रथा हिन्दू धर्म से अधिक संबंधित रही है अतः सर्वप्रथम हिन्दू धर्म ग्रन्थों के आधार पर सती प्रथा का वर्णन किया जाएगा। तत्पश्चात् सती प्रथा के सम्बन्ध में जैन धर्म के साहित्यों की क्या प्रतिक्रिया रही तथा इस परम्परा का जैन धर्म से क्या सम्बन्ध रहा पर प्रकाश डाला जाएगा।

अगर हम हिन्दू वाङ्मय पर दृष्टिपात करें तो सती प्रथा से सम्बन्धित तीन तरह के साहित्य हमारे सामने प्रस्तुत होता है। ये हैं—

(क) प्रथम कोटि में वे हिन्दू धर्म ग्रन्थ आते हैं, जिन्होंने कभी भी सती प्रथा का समर्थन नहीं किया है।

(ख) द्वितीय कोटि में वे ग्रन्थ आते हैं जो सती प्रथा का समर्थन तो करते हैं लेकिन सती होना उचित नहीं मानते हैं तथा सती हो रही स्त्री को पुनः सांसारिक जीवन में लौट आने का निर्देश देते हैं।

(ग) तृतीय कोटि में वे हिन्दू-धर्म-ग्रन्थ आते हैं जो स्पष्ट रूप से सती प्रथा का समर्थन करते हैं।

(क) सती प्रथा का समर्थन नहीं करने वाले हिन्दू-धर्म-ग्रन्थ :—वैदिक ग्रन्थों में सती प्रथा का समर्थन नहीं किया गया है। भारद्वाज गृहसूत्र[१] में स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि स्त्री को विवाह के समय से ही गृहाग्नि प्रज्वलित रखनी चाहिए। पति की मृत्यु के बाद भी पत्नी को अपने इस उत्तरदायित्व को निभाते रहना चाहिए अर्थात् गृहाग्नि को प्रज्वलित रखना चाहिए। तात्पर्य यह

१. भारद्वाज गृहसूत्र १,२

है कि जिस गृह की रक्षा का भार पहले पति पर था, पति की मृत्यु के बाद उस गृह की रक्षा का भार पत्नी पर आ जाता है। अब पत्नी का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उस गृह की रक्षा करे।

(ख) सती प्रथा का स्पष्ट ढंग से समर्थन करने वाले हिन्दू धर्म ग्रन्थ :— "कौशिक गृहसूत्र" के अनुसार विधवा को मृतक पति के सिर के समीप उत्तर दिशा की ओर लेटना चाहिए। इसके बाद अन्त्येष्टि करने वालों के प्रमुख अथवा चिता में आग लगाने वाला व्यक्ति मृतक को सम्बोधित करते हुए कहता है—"हे मर्त्य ! यह स्त्री (तुम्हारी पत्नी) परलोक में तुमसे युक्त होने के लिये तुम्हारे शव के पास लेटी है। इसने पतिव्रता स्त्री के सभी कर्त्तव्यों को पूरा किया है। इसे संसार में सन्तान एवं धन प्रदान करो।" इसके बाद उस स्त्री को उठाते हुए वह कहता है—"हे स्त्री ! तुम मृत (पति) के पास लेटी हो। वहाँ से उठो और उसके पास चली आओ तथा उसकी पत्नी बन जाओ जो तुम्हारा हाथ पकड़ता है और तुम से विवाह करने को तैयार है।[१]

यहाँ हम यह देखते हैं कि स्त्री (विधवा) स्वेच्छापूर्वक पति की चिता के साथ सती होना चाहती है, लेकिन उसके परिवार के लोग उसे ऐसा करने से मना करते हैं। वे लोग उससे कहते हैं कि तुम सती मत हो। तुम पुनः सांसारिक जीवन में लौट आओ और अपने देवर आदि से शादी करके उसके बच्चे की माँ बनकर अपनी घर-गृहस्थी बसाओ।

'विष्णु धर्मसूत्र' में लिखा हुआ है कि पति की मृत्यु के बाद विधवा को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिए अन्यथा उसे पति की चिता के साथ ही सती हो जाना चाहिए।[२]

इसी प्रकार 'वृहस्पति स्मृति' लिखता है कि पति की मृत्यु के बाद स्त्री चिता पर चढ़ जाए अथवा पति के कल्याण के लिए शुद्ध एवं सात्विक जीवन-यापन करें।[३] 'व्यासस्मृति' के अनुसार मृत पति को लेकर ब्राह्मणी अग्नि में प्रवेश करे, जीवित रहने पर केशों को सजाना छोड़कर तपस्या से शरीर को सुखावें।[४]

---

१. कौशिक गृहसूत्र, ५, ३, ६ वि० द्र० अथर्ववेद १८, ३, १, २

२. मृते भर्तरि ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहनं वा ।। विष्णुधर्मसूत्र, २५/१४

३. वृहस्पति २५/११

४. मृतं भर्त्तारमादाय ब्राह्मणी वह्निमाविशेत् ।
जीवन्ती चेत्यक्तकेशा तपसा शोधयेद्वपुः । व्यासस्मृतिः

इन धर्मग्रंथों में सती के साथ-साथ विकल्प के रूप में ब्रह्मचर्य व्रत रखने तथा संयमित जीवन जीने का निर्देश मिलता है। अतः हम कह सकते हैं कि इनमें भी सती होने का स्पष्ट निर्देश नहीं है। क्योंकि अगर विधवा संयमित जीवन जी सकती है तो यह आवश्यक नहीं है कि वह सती होती।

(ग) सती का स्पष्ट रूप से समर्थन करने वाले हिन्दू धर्म ग्रन्थ :— हिन्दू धर्म शास्त्रों में कुछ ऐसे भी ग्रन्थ मिलते हैं जो स्पष्ट रूप से सती प्रथा का समर्थन करते हैं। 'मिताक्षरा' के अनुसार जो स्त्री पति का अनुगमन करती है वह तीनों कुलों को पवित्र करती है।[१] 'वृद्‌हारित' ने सती की अत्यधिक प्रशंसा की है और लिखा है—जो स्त्री मृत पति का आलिंगन कर अग्नि में जल जाती है, वह पतिलोक प्राप्त करती है। साध्वी स्त्रियों के लिये पति के मरने पर अग्नि में जल मरने के अतिरिक्त कोई अन्य धर्म नहीं है। जो स्त्री अपने पति को लेकर अग्नि में जलती है, वह वैष्णव पद प्राप्त करती है, जिसे योगी ही पाते हैं।[२] 'वृहत्पाराशरस्मृति' लिखता है कि पति के साथ मरनेवाली पत्नी पति का उद्धार करती है।[३]

'दक्षस्मृति' में सती की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि सती स्वर्गलोक प्राप्त करती है। अर्थात् पति की मृत्यु पर जो नारी अग्नि प्रवेश करके मृत्यु प्राप्त करती है वह स्वर्गलोक में महिमा पाती है।[४] 'पराशरस्मृति' के अनुसार "मनुष्य के शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोम छिद्र होते हैं। जो स्त्री अपने पति का अनुसरण करती है, वह उतने ही काल तक स्वर्ग में निवास करती है। इसी ग्रन्थ में पुनः कहा गया है कि जिस प्रकार सर्प पकड़ने वाला सर्प को उसके

---

१. कुलत्रयं पुनात्येषा भर्त्तारं यानुगच्छति ।। मिताक्षरा ८६

२. या स्त्री मृतं परिष्वज्यदग्धा चेद्धव्यावहने
सा भर्तृलोकमाप्नोति···
साध्वीनामिह नारीगमग्निप्रपतनाददते ।
नान्यो धर्मोस्ति विज्ञेयो मृते भर्तरि कुत्रचित् ।।
वैष्णवं पतिमादाय या दग्धा हव्यावाहने
सा वैष्णवपदं याति यत्र गच्छन्ति योगिनः ।।जीवानन्द १, पृ० ३९५

३. भर्त्रा सट मृता भार्य्या भर्त्तारं सा समुद्धरेत् । वृहत्पाराशरस्मृति ।

४. मृते भर्तरि या नारी समारोहेद्धुताशनम्
सा भवेतु शुभाचारा स्वर्गलोक मतीयते ।। दक्षस्मृति

बिल से बलपूर्वक निकालता है, उसी प्रकार सती स्त्री पति का उद्धार करके अपने पति के साथ ही आनन्दित होती है ।१

इस तरह से हम देखते हैं कि हिन्दू धर्म ग्रन्थों में सती प्रथा को लेकर विभिन्न प्रकार के मत व्यक्त किए गये हैं । एक ओर कौशिक गृहसूत्र, भारद्वाज गृहसूत्र, विष्णुधर्मसूत्र, व्यासस्मृति, बृहस्पतिस्मृति जैसे हिन्दू धर्मग्रन्थ सती प्रथा का समर्थन नहीं करते हैं तो दूसरी ओर मिताक्षरा, दक्षस्मृति, पाराशरस्मृति जैसे हिन्दू ग्रंथ सती का स्पष्ट समर्थन करते हैं । इन ग्रंथों के अनुसार विधवा को सती होना आवश्यक है, अन्यथा वह पाप की भागी बनेगी । लेकिन सती प्रथा का समर्थन नहीं करने वाले ग्रन्थों पर विचार किया जाए तो हमें यह विदित हो जाता है कि पति की मृत्यु के बाद विधवा को सती नहीं होने का निर्देश तो उनमें मिलता ही है साथ ही साथ घर गृहस्थी बसाने का भी उल्लेख है । यह दूसरी बात है कि ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं होने की स्थिति में या संयम पालन से चूकने की स्थिति में उन ग्रन्थों में भी विधवा को सती होने का निर्देश मिलता है ।

अत: हमें हिन्दू धर्म ग्रंथों में सती का स्पष्ट और अस्पष्ट समर्थन करनेवाले धर्म ग्रंथ मिलते हैं । इन स्पष्ट और अस्पष्ट निर्णय के आधार पर यही कहा जा सकता है कि सती होना मात्र परिस्थिति एवं समय पर निर्भर करता है । अगर विधवा को यह विश्वास है कि वह संयम और ब्रह्मचर्य की रक्षा कर सकती है तो वह पति की मृत्यु के बाद भी अपना जीवन व्यतीत कर सकती है । इस स्थिति में सती होने का निर्णय लेने का कोई औचित्य नहीं जान पड़ता है ।

सती प्रथा और जैन धर्म :

प्रथम सती प्रथा का उल्लेख जैनागमों में मिलता ही नहीं है, अगर सती प्रथा का कुछ उद्धरण जैन आगमों में मिलता भी है तो उसे आपवादिक घटना के तौर पर लिया जाता है । जैनाचार्य सती प्रथा से सम्बन्धित ऐसे उद्धरणों का समर्थन नहीं करते हैं ।

'निशीथचूर्णि' में एक उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार सोपारक के पांच सौ व्यापारियों को कर नहीं देने के कारण राजा ने जीवित जला देने का

---

१. तिस्त्रः कोहृयोर्धकोटो च यानि लोमानि मानवे । पराशरस्मृति, ३२
तावात्कालं वसे स्वर्गे भर्तारं या नुगच्छति ।।
व्यालग्राहीयथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् । वतीं, ३३
एवं स्त्री पतिद्धृत्य तेनैव सह मोदते ।।

आदेश दिया था। राजाज्ञा के अनुसार उन व्यापारियों को जला दिया गया था और उन व्यापारियों की पत्नियां भी उनकी चिता में जल गई थी।[१] 'प्रश्नव्याकरण' के अनुसार चालुक्य देश की नारियाँ पति की मृत्यु के बाद आत्मदाह करती थी।[२] लेकिन जैनाचार्य इसका समर्थन नहीं करते हैं।

महानिशीथ में एक विवरण मिलता है जिसके अनुसार किसी राजा की विधवा कन्या सती होना चाहती थी किन्तु उसके पितृकुल में यह प्रचलन नहीं था अतः उसने अपना विचार त्याग दिया।[३] इसके आधार पर यही कहा जा सकता है कि जैनाचार्यों ने पति की मृत्यु के बाद स्वेच्छापूर्वक देह त्याग का समर्थन नहीं किया है तथा इस प्रकार के देह-त्याग को अनुचित माना है। सती प्रथा का समर्थन जैन आगम साहित्य और उसकी व्याख्याओं में कहीं नहीं मिलता है।

'आवश्यकचूर्णि' में दधिवाहन की पत्नि एवं चन्दना की माता आदि के कुछ ऐसे उदाहरण अवश्य मिलते हैं जिनमें ब्रह्मचर्य की रक्षा के निमित्त देह-त्याग किया गया है।[४] परन्तु यह अवधारणा सती-प्रथा की अवधारणा से अलग है। जैन धर्म यह नहीं मानता है कि मृत्यु के बाद पति का अनुगमन करने से अर्थात् जीवित चिता में जल मरने से पुनः स्वर्गलोक में उसी पति की प्राप्ति होती है। हिन्दू परम्परा में इस तरह का विश्वास किया जाता है।[५] लेकिन जैन धर्म अपने कर्म सिद्धान्त के प्रति आस्था रखता है और यह मानता है कि पति-पत्नी अपने-अपने कर्मों और मनोभावों के अनुसार ही विभिन्न योनियों में जन्म लेते हैं। यद्यपि परवर्ती जैन कथा साहित्यों में हमें ऐसे उल्लेख मिलते हैं जहाँ एक भव के पति-पत्नी आगामी भवों में जीवन साथी बने, किन्तु इसके विरुद्ध भी उदाहरणों की जैन कथा साहित्य में कमी नहीं है।

अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि धार्मिक आधार पर जैनधर्म में सती प्रथा का समर्थन नहीं किया गया है। जैन धर्म के सती-प्रथा के समर्थक नहीं होने के कुछ सामाजिक कारण भी रहे हैं। व्याख्या साहित्य में ऐसी

---

१. निशीथचूर्णि, भाग-२, पृ० ५९-६०, वही भाग-४, पृ० १४
२. प्रश्नव्याकरण, २/४/७
३. महानिशीथ, पृ० २९, वि०-द० जैनागम साहित्य में भारतीय समाज पृ० २६९।
४. आवश्यक चूर्णि, भाग-१, पृ० ३१८
५. पराशरस्मृति, ३२-३३

अनेक कथाएँ वर्णित हैं जिनके अनुसार पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी न केवल पारिवारिक दायित्व का निर्वाह करती थी अपितु पति के व्यवसाय का संचालन भी करती थी। एक सार्थवाह की पत्नी विधवा होने पर स्वयं व्यापार का संचालन करती थी।[१] पुत्रहीना अथवा पुत्र के वयस्क न होने की स्थिति में विधवा रानी मन्त्री के माध्यम से राज्य कार्य का संचालन करती थी।[२]

इसके अतिरिक्त जैनागमों और उसकी व्याख्याओं में ऐसे भी उल्लेख मिलते हैं जहाँ कि स्त्री पति की मृत्यु के पश्चात् विरक्त होकर भिक्षुणी बन जाती थी। मदनरेखा[३] यशभद्रा[४] पद्मावती[५] जैसी स्त्रियों का उदाहरण हमारे सामने प्रस्तुत होता है। इन्होंने पति की मृत्यु के बाद सती होने की अपेक्षा भिक्षुणी बनना ज्यादा उचित समझा।

भिक्षुणी बनी स्त्रियाँ जैन भिक्षुणी संघ को अपना आश्रय स्थल समझती थी। जैन भिक्षुणी संघ उन सभी स्त्रियों के लिये शरणस्थल होता था जो विधवा, परित्यक्ता अथवा आश्रयहीना होती थी। जैन धर्म में सती प्रथा को प्रश्रय नहीं मिलने का यह भी एक कारण हो सकता है। क्योंकि जब-जब भी किसी अबला पर (जो भिक्षुणी संस्था से सम्बन्धित होती थी) किसी प्रकार का अत्याचार किया जाता था जैन भिक्षुणी संघ उसके लिए कवच बन जाता था। इस प्रकार भिक्षुणी संघ में प्रवेश लेने के बाद स्त्रियाँ पारिवारिक उत्पीड़न से तो *बचती ही थी साथ ही साथ एक सम्मानपूर्ण जीवन भी व्यतीत करती थी।*

फिर भी जैन परम्परा में ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दनबाला, बसुमती, राजीमती द्रोपदी, पद्मावती आदि सोलह स्त्रियों को सती कहा गया है।[६] उनके नामों का स्मरण तीर्थंकरों के साथ किया जाता है। उन स्त्रियों को सती इसलिये कहा गया क्योंकि ये अपने शील की रक्षा हेतु या तो अविवाहित रही या पति की मृत्यु के पश्चात् अपने चरित्र एवं शील को सुरक्षित रख सकी। आज जैन साध्वियों के लिये प्रचलित नाम महासती है, इसका मुख्य आधारशील का पालन है।

---

१. अनुतरोपपातिक, ३१९
२. उत्तराध्ययन १३
३. उत्तराध्ययन निर्युक्ति पृ० १३६-४०
४. आवश्यक निर्युक्ति, १२८३
५. आवश्यक चूर्णि, भाग २, पृ० १८३
६. श्री सोलह सती

जैन आगमिक व्याख्याओं और पौराणिक रचनाओं के पश्चात् जो प्रबन्ध साहित्य लिखा गया उसमें सर्वप्रथम सती-प्रथा का ही जैनीकरण रूप हमें देखने को मिलता है। 'तेजपाल-वस्तुपाल-प्रबन्धकोश' में बताया गया है कि तेजपाल और वस्तुपाल की मृत्यु के पश्चात उनकी पत्नियों ने अनशन करके प्राण त्याग किया।[१] यहाँ पति की मृत्यु के पश्चात् शरीर त्यागने का उपक्रम तो है किन्तु उसका स्वरूप सौम्य बना दिया गया है। वस्तुतः यह उस युग में प्रचलित सती-प्रथा की जैन धर्म में क्या प्रतिक्रिया हुई थी, उसी का सूचक है।

इस तरह से हम देखते हैं कि जैन धर्म में सती-प्रथा का उल्लेख आपवादिक रूप में हुआ है दूसरी तरफ हिन्दू-धर्म में इसके अनेक विवरण मिलते हैं। अतः यहाँ एक समस्या यह है कि सती प्रथा का प्रचलन जैन धर्म में इतना कम क्यों रहा जबकि हिन्दू धर्म में यह अत्याधिक प्रचलित रहा। प्रतियुत्तर में यही कहा जा सकता है कि जैन धर्म में विधवाओं, परित्यक्ताओं के लिये जैन भिक्षुणी संघ के रूप में एक आश्रय स्थल था। यहाँ स्त्रियाँ शांतिपूर्वक, सदाचार व्रत का पालन करते हुए अपना जीवन यापन करती थी। उन्हें पारिवारिक या सामाजिक किसी भी स्तर पर किसी तरह का भय नहीं रहता था। हिन्दू धर्म में इस तरह की संस्था का अभाव रहा होगा? अतः हिन्दू विधवाएँ शरण स्थल नहीं पाने की वजह से तथा कुछ अन्य कठिनाईयों के कारण सती होती होगी? अतः यहाँ यह विचार किया जा सकता है कि अगर हिन्दू धर्म में भी जैन भिक्षुणी संघ की तरह कोई संस्था रहती तो संभव था कि सती प्रथा जैसी परम्परा का वहाँ भी अभाव रहता।

---

१. प्रबन्धकोश पृ० १२९

सौजन्य से :

ARBEITS INDIA

Export House recognised by Govt. of India

Proprietor : **SANJIB BOTHRA**

8/1, MIDDLETON ROW,
5th Floor, Room No. 4
CALCUTTA-700 001

Phone : 201029/6256/4730
Telex : 021-2333 ARBI IN
Fax No. : 0091-33290174

चैत्रगच्छ का संक्षिप्त इतिहास

(डॉ० शिवप्रसाद सिंह)

पूर्वानुवृत्ति।

क्रमांक	वि० सं०	तिथि, वार	आचार्य का नाम	प्रतिमा लेख/ स्तम्भ	प्रतिष्ठास्थान	संदर्भ ग्रन्थ
३१.	१३७३	वैशाख सुदि ७ सोमवार	पद्मदेवसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्ति— लेखांक २५३
३२.	१३७८	वैशाख सुदि ६ बुधवार	रत्नसिंहसूरि	जिन प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	,,	वही, लेखांक २७६
३३.	१३७८	ज्येष्ठ वदि ९ सोमवार	हेमप्रभसूरि के शिष्य रामचन्द्रसूरि	सुमतिनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	विमलवसही, आबू	मुनि जयन्तविजय, संपा०— **अर्बुदप्राचीन जैन लेख संदोह** लेखांक १३९ एवं मुनि जिन विजय, संपा० **प्राचीन जैन लेख संग्रह** भाग २, लेखांक २०२

३४.	१३८१	वैशाख सुदि १	धर्मदेवसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त-भाग-३, लेखांक २२४९
३५.	१३८६	माघ वदि ३ सोमवार	पद्मदेवसूरि के पट्टधर मानदेवसूरि	शांतिनाथ की धातु-प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, जानीशेरी, वडोदरा	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग-२, लेखांक १५०
३६.	१३८७	माघ वदि शुक्रवार	पद्मदेवसूरि के पट्टधर मानदेवसूरि	पार्श्वनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	स्तम्भन पार्श्वनाथ जिनालय, खारवाड़ा, खंभात	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १०४१
३७.	१३…?	फाल्गुन सुदि ८	मामदेवसूरि	,,	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ३८१
३८.	३८८८	मार्गशीर्ष सुदि ९ शनिवार	मदनसूरि के पट्टधर धर्मसिंहसूरि	महावीर की धातु की लेख	,,	वही, लेखांक ३२६
३९.	१३८८	वैशाख वदि २ सोमवार	हरिचन्द्रसूरि	शांतिनाथ की धातु प्रतिमा का लेख	जैन देरासर, कोलवड़ा	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ६५९

४०.	१३८८	तिथिविहीन	आमदेवसूरि	,,	चन्द्रप्रभदेरासर, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त— भाग ३, लेखांक २२५५
४०अ-	१३९१	चैत्रवदि ७ सोमवार	मानदेवसूरि	पद्मदेवसूरि के शिष्य भीमा के मूर्ति पर उत्कीर्ण लेख	शत्रुंजय	मधुसूदन ढांकी और लक्ष्मणभोजक "शत्रुंजयगिरिना केटलाक अप्रकट प्रतिमालेखों" सम्बोधि वर्ष-७, अंक १-४ लेखांक २३
४१.	१३९१	माघ सुदि ६ रविवार	हरिप्रभसूरि के शिष्य धर्मदेवसूरि	अजितनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, बडोदरा	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्ति भाग २, लेखांक ४९
४२.	१३९२(३)	माघ वदि ११ शुक्रवार	पद्मदेवसूरि के शिष्य मानदेवसूरि	नमिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	सीमंधर स्वामी का मन्दिर, खारवाडो, खंभात	वही, भाग २ लेखांक १०६८
४३.	१३९६	माघ वदि २ सोमवार	मानदेवसूरि	पार्श्वनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ देरासर, देवसानो पाडो, अहमदाबाद	वही, भाग १ लेखांक १०९३

४४.	१३९७	माघ······९···	,,	,,	शांतिनाथ जिनालय, द्दाणी, बडोदरा	वही, भाग २ लेखांक २५६
४५.	१४०५	बैशाख सुदि २	धर्मदेवसूरि	आदिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ देरासर कनासानो पाडो पाटण	वही, भाग १ लेखांक ३५७
४६.	१४०८	बैशाख सुदि ५ गुरुवार	पद्मदेवसूरि के पट्टधर मानदेवसूरि	शांतिनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख	शीतलनाथ जिनालय, कुम्भारपाडो, खंभात	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्ति भाग २, लेखांक ६५०
४७.	१४१७	ज्येष्ठ सुदि ९ गुरुवार	मानदेवसूरि	आदिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ देरासर, कनासानो पाडो, पाटण	वही, भाग १ लेखांक ३२४
४८.	१४२२	बैशाख सुदि १२ बुधवार	मुनिरत्नसूरि	शांतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्ति लेखांक ४४९
४९.	१४२४	आषाढ़ सुदि ६ गुरुवार	धर्मदेवसूरि	आदिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	,,	वही, लेखांक ४७०

५०.	१४३०	,,	धर्मदेवसूरि	शांतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	संभवनाथ देरासर, पादरा	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्ति भाग २, लेखांक १४
५०अ-	१४३२	फाल्गुन सुदि २ शुक्रवार	गुणाकरसूरि के शिष्य रत्नप्रभसूरि की प्रतिमा के प्रतिष्ठापक उनके शिष्य	गुरु-प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	,,	मधुसूदन ढाकी और लक्ष्मण भोजक—"शत्रुंजयगिरिना केटलाक अप्रकट प्रतिमा लेखो" सम्बोधि, जिल्द ७, अंक १-४
५१.	१४३५	माघ वदि १३ सोमवार	गुणदेवसूरि	पार्श्वनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्ति लेखांक ५१६
५२.	१४४६	बैशाख वदि···	देवचन्द्रसूरि के पट्टधर पार्श्वचन्द्रसूरि	आदिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	सुमतिनाथ मुख्य बावन—जिनालय, मातर	बुद्धिसागर, पूर्वोक्ति भाग २. लेखांक ५२४
५३.	१४५१	ज्येष्ठ सुदि ४ रविवार	पासदेवसूरि	शांतिनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	जैन मन्दिर, ऊँझा	वही, भाग १ लेखांक १५५

५४.	१४५८	फाल्गुन वदि १ शुक्रवार	वीरचन्द्रसूरि	आदिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्ति लेखांक ५८५
५५.	१४६६	बैसाख सुदि ३ सोमवार	धर्मदेवसूरि के पट्टधर पार्श्वचन्द्रसूरि	शांतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	संभवनाथ जिनालय, बोलपीपलो, खंभात	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्ति भाग २ लेखांक ११३३
५६.	१४६६	मार्गशीर्ष सुदि-१० बुधवार	वीरचन्द्रसूरि	आदिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्ति लेखांक ६६९
५७.	१४७४	फाल्गुन सुदि ९ सोमवार	पार्श्वचन्द्रसूरि के शिष्य मलयचन्द्रसूरि	,,	धर्मनाथ देरासर, उपलोगभारो, अहमदाबाद	मुनि बुद्धिसागर पूर्वोक्ति—भाग १, लेखांक १११३
५८.	१४७७	बैशाख सुदि ५	गुणदेवसूरि	अनन्तनाथ की धातु की चौबीसी प्रतिमा उत्कीर्ण लेख	शांतिनाथ देरासर द्दाणीं, बड़ोदरा	वही, भाग २ लेखांक २६७

श्रावक जीवन

—आचार्यश्री विजयभद्र गुप्त सूरीश्वरजी

परम कृपानिधि महान् श्रुतधर आचार्य श्री हरिभद्र सूरि विरचित धर्म बिन्दु ग्रन्थ के तीसरे अध्याय पर दिये गए मननीय रसपूर्ण और प्रेरणादायी प्रवचन। प्रवचनकार हैं पूज्य आचार्य श्री विजयभद्र सूरीश्वरजी महाराज।

सद्धर्मश्रवणादेवं नरो विगतकल्मषः।
ज्ञाततत्त्वो महासत्त्वः परं संवेगमागतः॥
धर्मोपादेयतां ज्ञात्वा संजातेच्छोऽत्र भावतः।
दृढं स्वशक्तिमालोच्य ग्रहणे संप्रवर्तते॥

धर्मश्रवण से पापमुक्ति :

अधिकार प्राप्त सद्‌गुरु से धर्मश्रवण करते-करते मनुष्य कुछ पापों से मुक्त हो सकता है। दो बातें हैं समझने की। पहली बात है, धर्म का उपदेश देनेवालों की। और दूसरी बात है धर्म का उपदेश सुननेवालों की। दोनों योग्यताप्राप्त हों तो अवश्य पापों से मुक्ति होती है।

जिनशासन में धर्मोपदेशक की कुछ योग्यतायें अपेक्षित हैं। सभी साधु उपदेशक नहीं बन सकते। उपदेशक साधु 'गीतार्थ' होना चाहिए। यानी शास्त्रज्ञ होना चाहिए। देशज्ञ और कालज्ञ होना चाहिए। श्रोताओं की बौद्धिक क्षमता को पहचाननेवाला होना चाहिये। मात्र शास्त्रज्ञ होने से मनुष्य धर्मोपदेशक नहीं बन सकता। इतना ही नहीं, शास्त्रों का अध्ययन किया हो परन्तु चिंतन—परिशील नहीं किया हो, तो भी वह उपदेशक नहीं बन सकता। चिंतन—परिशीलन किया हो, परन्तु देश-काल की वास्तविकता को नहीं जानता हो, तो भी वह धर्म का उपदेश नहीं दे सकता। चूंकि धर्म का सम्बन्ध मात्र वर्तमानकाल से नहीं है। वर्तमान जीवन से नहीं है, उसका सम्बन्ध भविष्यकाल के साथ भी है, पारलौकिक जीवन के साथ भी है। यदि मनुष्य धर्म को गलत अर्थ में समझ ले तो उसका वर्तमान और भविष्य दोनों बिगड़ जाय। योग्यतारहित धर्मोपदेशक ऐसा अहित कर देता है। वह दूसरों पर, श्रोताओं पर उपकार नहीं करता है वरन् घोर अपकार करता है। वह स्वयं भी उन्मार्ग-देशना देकर डूबता है और दूसरों को डुबाता है।

धर्म का सिद्धान्त सही हो, परन्तु उस सिद्धान्त को समझने की क्षमता श्रोता में नहीं हो, तो वैसे सिद्धान्त का उपदेश नहीं देना चाहिये! जिस उपदेश

के लिए जो योग्य नहीं है, उसे वैसा उपदेश नहीं देना चाहिये। यदि कोई उपदेशक देता है...तो वह अनर्थ करता है, अहित करता है। धर्मोपदेशक होना बड़ी जिम्मेदारी का काम है।

धर्मोपदेशक सुयोग्य है परन्तु श्रोता अयोग्य है, तो वह श्रोता पापमुक्त नहीं हो सकता है! श्रोता सुयोग्य होना चाहिये। भले ही वह सर्वज्ञशासन के सिद्धान्तों को नहीं जानता हो या नहीं मानता हो, परन्तु यदि वह सामान्य धर्मों का पालन करता है तो सर्वज्ञज्ञान का धर्मोपदेश सुनते-सुनते श्रद्धावान् बनेगा ही। उसका मिथ्यात्व बर्फ की तरह पानी-पानी होकर बह जायेगा। उसका मिथ्यात्व का पाप नष्ट हो जायेगा। उसके तीव्र कषाय मंद हो जायेंगे।

राजा कुमारपाल का पूर्वजन्म :

गुजरात के राजा कुमारपाल के पूर्वजन्म की बात है! कुमारपाल पूर्वजन्म में डाकू था। उसका नाम था नरवीर। (कुछ ग्रन्थों में उसका नाम 'जयंत' भी बताया गया है और 'जयताक्' भी कहा गया है) मालवा और गुजरात के बार्डर पर उसका अड्डा था। एक पहाड़ी पर वह रहता था। छोटा सा राज्य ही उसने स्थापित कर लिया था। पराक्रमी था। वीर योद्धा था। कई गांवों को लूट लिये थे उसने। जो कोई मुसाफिर या काफिला वहाँ से गुजरता, नरवीर उसको लूट लेता था।

मैं आपको यह बात बताना चाहता हूं कि ऐसे डाकू में भी सद्धर्म का श्रवण करने की योग्यता थी और उसके पुण्योदय से धर्मश्रवण कराने वाले महापुरुष भी उसको मिल गये थे। उसका मिथ्यात्व और उसके तीव्र कषाय कैसे नष्ट हुए, यह बात आपको बताऊंगा।

नरवीर का विशाल गिरोह था। सारे प्रदेश में उसकी धाक थी। मुसाफिरों के लिये जैसे कि वह रास्ता ही बन्द हो गया था। एक दिन मालवा का धनाढ्य व्यापारी धनदत्त अपने काफिले के साथ वहाँ से गुजर रहा था। नरवीर के साथी डाकूओं ने धनदत्त को लूट लिया। धनदत्त के सभी रक्षकों की हत्या कर दी गयी। धनदत्त कैसे भी करके वहाँ से बच निकला। उसने अपना सर्वस्व खो दिया था। वह मारे रोष के और निराशा के अत्यंत बेचैन हो गया था। वैर की आग से उसका हृदय जल रहा था। वह सोचता है—'अनेक क्रूर पिशाचों को इकट्ठे कर जैसे कोई राक्षस लोगों को सताता हो, वैसे यह नरवीर पल्लीपति, अनेक डाकूओं को इकट्ठे कर, मुसाफिरों को लूटता है, मारता है...। यह मदोन्मत्त बना हुआ है। यदि इसका अभी प्रतिकार नहीं किया जायेगा तो यह बहुत ज्यादा आतंक फैलायेगा। मेरे जैसे अनेक मुसाफिरों को कष्ट देगा।

मुझे ही इसका प्रतिकार करना होगा। परन्तु मैं अकेला कुछ नहीं कर सकता। किसी राजा की सहायता लेनी होगी।' ऐसा विचार कर वह मालवदेश के राजा के पास गया। राजा को सारा वृत्तान्त निवेदन किया। राजा ने कहा: 'श्रेष्ठि तुम अपने घर जाओ। उस नरवीर पल्लीपति को पराजित कर, तुम्हारा सारा धन तुम्हें लौटा दिया जायेगा। तुम निश्चिंत रहो।

धनदत्त ने कहा: 'महाराज, मेरी संपत्ति चली गई, उसकी मुझे चिन्ता नहीं है। मैंने प्रतिज्ञा की है कि 'उस उन्मत्त पल्लीपति का पूरा सफाया करूंगा, उसका उन्मूलन करूंगा।' इसलिए मैं आपसे विनती करता हूं कि आप आपका विशाल सैन्य मेरे साथ भेजें। बस, मैं उस दुष्ट से निपट लूंगा।

मालवपति ने धनदत्त की बात सुनकर प्रसन्नता व्यक्त की। उसने धनदत्त को विशाल सेना दी। सेना लेकर धनदत्त उस जगह पहुंचा कि जहाँ नरवीर की पल्ली थी। जिस पहाड़ी पर पल्ली थी उस पहाड़ी को सैनिकों ने घेर लिया। नरवीर ने परिस्थिति की गम्भीरता को परख लिया। हालांकि वह पराक्रमी योद्धा था, परन्तु विशाल सेना के साथ लड़ना और जान-बूझ कर मरना, उसको उचित नहीं लगा। परन्तु उसके साथी डाकुओं ने जमकर सैनिकों का मुकाबला किया। धनदत्त पागल की तरह लड़ रहा था। बहुत से डाकू मारे गये। नरवीर को अपनी सगर्भा पत्नी की चिन्ता सता रही थी। वह गुप्त रास्ते से पहाड़ी से उतर कर गुप्त रास्ते से जंगल में अदृश्य हो गया, परन्तु उसकी गर्भवती पत्नी धनदत्त के हाथ पकड़ा गई। धनदत्त पर क्रोध का राक्षस हावी था। उसने नरवीर की पत्नी का पेट चीर डाला...और गर्भ को पत्थर पर पछाड़ कर मार डाला। यह दृश्य सैनिकों ने देख लिया। धनदत्त के राक्षसी कृत्य पर सैनिकों ने थूक दिया। धनदत्त ने सम्पूर्ण पल्ली को जला दिया।

धनदत्त के मन को शान्ति हुई। वह सेना के साथ वापस मालवपति के पास आया। मालवपति को धनदत्त की क्रूरतापूर्ण हिंसा की बात मालूम हो गई थी। नरवीर की पत्नी की और उसके गर्भ की किस प्रकार घोर हत्या उसने की थी, राजा को मालूम हो गया था। जैसे ही धनदत्त राजा के सामने उपस्थित हुआ, राजा ने उसका घोर तिरस्कार करते हुए कहा:

'रे नीच वणिक, तू भले ही उच्च जाति में पैदा हुआ हो, तेरे कर्म एक शूद्र को भी शरमाये वैसे अधम हैं। तू कितना निर्दय है? तूने स्त्रीहत्या तो की, साथ में भ्रूणहत्या भी की? एक चाण्डाल भी ऐसा नीच कृत्य नहीं करता है। तू मेरे सामने से दूर हो जा। तेरा काला मुँह मैं देखना नहीं चाहता।'

राजा ने धनदत्त की सम्पत्ति छीन ली और उसको देशनिकाला दे दिया। धनदत्त मालवदेश छोड़कर जंगल में चला गया। उसको अपने किये हुए पाप का घोर पश्चाताप भी हुआ। उसने तपश्चर्या करते हुए अपना शेष जीवन पूर्ण किया।

नरवीर को सद्गुरु की प्राप्ति :

नरवीर भागता हुआ... भटकता हुआ... जंगल में एक वृक्ष के तले बैठा था। खून से सनी हुई तलवार उसके पास पड़ी थी। उसके कपड़े भी खून से लथपथ थे। वह सर्वहारा बन... निराशा में डूबा हुआ था। मन में धनदत्त के प्रति घोर आक्रोश था। साथियों की और पत्नी की मृत्यु से वह अत्यन्त व्यथित था। भूख और प्यास भी उसको सता रही थी।

वहां उसने कुछ साधुपुरुषों को आते हुए देखा। आचार्य श्री यशोभद्र सूरिजी अपने शिष्यपरिवार के साथ वहां से गुजर रहे थे। ज्यों ही आचार्य पास आये, नरवीर ने खड़े होकर आचार्य को प्रणाम किया। आचार्य ने नरवीर को 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद दिया। नरवीर की दीन-हीन अवस्था देखी। आचार्यदेव करुणावत थे। उन्होंने नरवीर को पूछा : 'महानुभाव, तेरी ऐसी अवस्था देखकर लगता है कि तू बहुत दुःखी है। तेरी ऐसी अवदशा कैसे हुई ?'

आचार्यदेव के पास अन्य साधु भी आकर खड़े रह गये थे। कुछ गृहस्थ भी जो साथ चल रहे थे, वे भी वहां आकर खड़े रह गये थे। नरवीर का दिल खुल गया मुनिराज के सामने। उसने अपने जीवन के सभी कुकर्म सुना दिये आचार्यदेव को। अपने साथी और अपनी पत्नी की हत्या का वृत्तान्त कहते-कहते नरवीर की आंखें आंसूओं से भर गई। आचार्यदेव ने वात्सल्य-पूर्ण हृदय से कहा :

गुरुदेव की धर्मदेशना :

'महानुभाव, तू एक पल्लिपति था यानी छोटा राजा था। तेरे पास बिपुल सम्पत्ति थी, फिर भी लोभवश होकर तूने मुसाफिरों को लूटने का पाप कार्य किया...। अच्छा नहीं किया। एक निर्धन मनुष्य भी जो कार्य नहीं करता है वैसा पापकार्य तूने धनवान होकर किया...। परिणामतः तेरा घोर पराभव हुआ... तेरा सब कुछ नष्ट हो गया ..। महानुभाव, याद रखना कि लुटेरे को स्थानभ्रष्ट होना पड़ता है। उसके कुल का नाश होता है और उसका वैभव चला जाता है।

बुद्धिमान मनुष्य को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये। जीवनपर्यन्त भले ही निर्धनता का दुःख सहना पड़े, परन्तु चोरी या लूट करना सर्वथा अनुचित

है। दुर्जन ही चोरी या लूट का पाप करता है। इसलिये तू यह पापकर्म छोड़ दे और प्रशस्त कार्य कर।

पापों से दुःख मिलता है, धर्म से सुख मिलता है, इसलिये पापों का त्याग कर, धर्म का आदर करना चाहिये। इस मनुष्यजीवन को व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिये।

बहुत थोड़े शब्दों में, सरल भाषा में...और मधुर ध्वनि में आचार्यदेव ने धर्मोपदेश दिया। जगह जंगल की थी, समय अल्प था, विहार कर गांव में पहुंचना था... और सामने एक डाकू था। आचार्यदेव गीतार्थ ज्ञानी पुरुष थे। देशज्ञ और कालज्ञ महापुरुष थे। उन्होंने वहां संक्षिप्त उपदेश ही दिया।

साथ में जो मुसाफिर थे, उनको आचार्यदेव ने इशारा किया। एक मुसाफिर ने नरवीर को भोजन दिया, पानी दिया और आगे चल दिया। आचार्यदेव ने नरवीर को कहा : 'महानुभाव, तू यहां से **एकशिला**' नगरी में जाना। वहां '**आढर श्रेष्ठि**' रहता है, वह तुझे सहारा देगा।' नरवीर ने आचार्यदेव को पुनः नतमस्तक हो वंदन किया।

आचार्यदेव अपने मुनिपरिवार के साथ वहां से चल दिये। नरवीर जाते हुए आचार्यदेव को भक्तिभाव से निहारता रहा। उसके मन में आचार्यदेव के प्रति प्रीतिभाव जगा और उनके वचनों पर श्रद्धा हुई। यह कैसे हुआ ?

आचार्यदेव के उपदेश से नरवीर का मिथ्यात्व दूर हुआ और उसके तीव्र (अनन्तानुबन्धी) कषाय शान्त हुए। मिथ्यात्व और कषाय ये दो बड़े पाप हैं। जब तक ये दो पाप नहीं जाते हैं तब तक मनुष्य की मोक्ष यात्रा प्रारम्भ नहीं होती है। तब तक मनुष्य की ज्ञानदृष्टि नहीं खुलती है और मनुष्य अन्तर्मुख भी नहीं बन पाता है।

मिथ्यात्व की प्रतिक्रिया :

जीवात्मा में रहा हुआ 'मिथ्यात्व' एक अशुभ भाव है। इस अशुभ भाव के साथ अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ जुड़े हुए होते हैं। ये साथ रहते हैं और साथ ही जाते हैं। ये अशुभ भाव जब तक जीवात्मा में रहते हैं तब तक—

१. जीव शान्ति का अनुभव नहीं कर सकता है,

२. मोक्ष पाने की इच्छा पैदा नहीं होती है,

३. संसार के प्रति वैराग्य जाग्रत नहीं होता है,

४. दुःखी जीवों के प्रति अनुकम्पा का भाव पैदा नहीं होता है और

५. धर्म का, गुरु का एवं परमात्मा का वास्तविक स्वरूप वह जान नहीं सकता है एवं मान नहीं सकता है। जो धर्म नहीं होता, उसको वह धर्म

मानता है, जो गुरु नहीं होते, उसको गुरु मानता है और जो परमात्मस्वरूप नहीं होता, उसको परमात्मा मानता है। यानी देव-गुरु और धर्म के विषय में वह भ्रमित रहता है।

मिथ्यात्व के साथ अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ रहने से मिथ्यात्व के भाव को तीव्रता प्राप्त होती है।

सभा में से : 'अनन्तानुबन्धी' का अर्थ क्या होता है ?

महाराजश्री : अन्तहीन अनुबन्ध वाले क्रोधादि। कई वर्ष बीत जायं तो भी जिसका क्रोध...वैरभाव शान्त नहीं होता है, कई वर्ष व्यतीत होने पर भी जिसका मान...अभिमान दूर नहीं होता है, कई वर्ष बीत जायं तो भी जिसका माया-कपट दूर नहीं होता है और कई वर्ष बीत जाने पर भी जिसका लोभ कम नहीं होता है...उसको अनन्तानुबन्धी कषाय कहते हैं।

ऐसे कषाय जिस जीवात्मा में पड़े हों, वह शान्ति का अनुभव कैसे कर सकता है ? क्रोध, मान, माया और लोभ, अशान्ति ही पैदा करने वाले तत्त्व हैं। क्या क्रोधी व्यक्ति शान्ति पा सकता है ? क्या अभिमानी मनुष्य प्रशमरस का पान कर सकता है ? क्या मायावी मनुष्य कभी भीतर की प्रसन्नता का अनुभव कर सकता है ? क्या लोभी मनुष्य कभी शान्ति की नींद ले सकता है ? और, ये तो अनन्तानुबन्धी के क्रोधादि ! कितने तीव्र और कितने खतरनाक ?

वैसे मिथ्यात्व का दुर्भाव, मोक्ष को समझने नहीं देता है। मोक्ष का जो वास्तविक स्वरूप है—'**कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्ष**' : सभी कर्मों से आत्मा की मुक्ति—यह समझने नहीं देता है। अनुराग तो होगा ही कहां से ? 'मुझे मुक्ति पानी है'—प्राय: तो ऐसा विचार ही नहीं आने देता है। कभी विचार आ जाय, तो भी वास्तविक मुक्तिबोध नहीं होने देता है।

हां, मिथ्यात्व को वैराग्य हो सकता है, परन्तु वह वैराग्य या तो दु:खजनित होता है अथवा मोहजनित। ज्ञानजनित वैराग्य प्राय: उसे नहीं होता है। कषायों की प्रबलता कम होने पर, मिथ्यात्व की उपस्थिति में भी वैराग्य पैदा हो सकता है, फिर भी वह वैराग्य शायद ही वीत रागता के पास ले जाय ! मंद कषाय तीव्र होने पर वैराग्य के भाव को नष्टभ्रष्ट कर देते हैं। हमें तो ऐसा वैराग्य इष्ट है कि जो वैराग्य हमें वीतराग तक पहुंचा दे।

मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायों की उपस्थिति में जीवात्मा में अनुकम्पा-वृत्ति जाग्रत नहीं हो पाती है। जब कषायों की मन्दता हो तब दया-करुणा दिखाई देती है परन्तु वह दया-करुणा बड़े जीवों के विषय तक ही सीमित रहती है। स्थावर जीवों की तो उनको पहचान ही नहीं होती ! फिर

वे कैसे उन जीवों के प्रति दयावान् बन पायेंगे ? त्रस जीवों के प्रति भी उनकी दया बहुत सीमित होती है। अज्ञानतावश वे जीवहिंसा में धर्म मानते हैं ! धर्म के नाम पर वे हिंसा करते हैं !

इस अपेक्षा से मिथ्यात्व को बड़ा पाप कहा गया है। अनन्तानुबन्धी कषायों को भी बड़ा पाप कहा गया है। सद्गुरु के निमित्त से यह पाप दूर हो सकता है। कभी निमित्त के बिना स्वाभाविकता से भी यह पाप दूर होता है। परन्तु राजमार्ग है निमित्त का !

नरवीर को सद्गुरु का निमित्त मिल गया। उसका मिथ्यात्व का पाप दूर हो गया।

सभा में से : अच्छा निमित्त पुण्यकर्म से प्राप्त होता है न ?

महाराजश्री : हां, पुण्यकर्म का उदय होता है तब अच्छा निमित्त मिलता है और पापकर्म का उदय होता है तब बुरा निमित्त मिलता है।

नरवीर एकशिला नगरी में :

नरवीर एकशिला नगरी में पहुंच गया। उसके मन में अब शान्ति थी। उसके मन में श्रद्धा का दिया जल उठा था। वह आढर श्रेष्ठि की हवेली के विशाल परिसर में पहुंचा। वहां उसने अनेक मुसाफिरों को एवं गरीबों को भोजन करते देखा। हालांकि वह भी भूखा तो था ही, परन्तु वह भोजन करने नहीं बैठा। वह खड़ा रहा एक तरफ। सेठ आढर ने नरवीर को देखा। नरवीर ने भी आढ़र सेठ को देखा। सेठ ने इशारे से नरवीर को अपने पास बुलाया।

'तू मुसाफिर है, दूर से आया लगता है, भोजन कर ले।' सेठ ने नरवीर को कहा।

'सेठ, मैं मुफ्त में भोजन करना नहीं चाहता। मुझे पहले कोई कार्य बताइये, बाद में भोजन करूंगा।' नरवीर ने नम्रता से और विनय से बात की। आढ़र सेठ को नरवीर में विशेषता दिखायी दी। आज दिन तक आढ़र सेठ के सदाव्रत में हजारों लोग भोजन कर गये थे, परन्तु नरवीर एक पहला ही व्यक्ति था, जो मुफ्त भोजन करना नहीं चाहता था। सेठ ने कहा : 'भैय्या, पहले तू भोजन कर ले, बाद में तुझे काम दूंगा।

नरवीर ने भोजन कर लिया और आढ़र श्रेष्ठि ने उसको अपने घर नौकरी में रख लिया। नरवीर सत्त्वशील और पराक्रमी पुरुष तो था ही। उसमें वफादारी का भी विशिष्ट गुण था। नौकरी में वफादारी का गुण अनिवार्य रूप से अपेक्षित होता है और, यह गुण जिसमें होता है, वह सेठ का विश्वासपात्र बन जाता है, स्नेहपात्र बन जाता है।

उन्नति का मूल गुण वफादारी :

आढ़र श्रेष्ठि की पैनी दृष्टि में नरवीर खरा उतरा। श्रेष्ठि के घर में चार-चार जवान पुत्रवधुयें थी। नरवीर घर में ही रहता था, परन्तु उसने कभी भी आंख उठाकर पुत्रवधुओं के सामने नहीं देखा, न अनावश्यक बातें की किसी भी औरत के साथ। आढ़र श्रेष्ठि ने नरवीर की सच्चरित्रता देखी। सेठ का उसके प्रति प्रेम बढ़ गया।

बहुत बड़ी बात है यह। ज्यादातर तो ऐसा देखने में आता है कि जिसके घर में नौकर पलता है, रहता है, उस घर की ही बहन-बहुओं के साथ दुराचार-व्यभिचार करने में हिचकिचाता नहीं है। पहले अच्छे कार्य करके सेठ-सेठानी का विश्वास सम्पादन कर लेता है, बाद में विश्वासघात ! विश्वास-घात कितना बड़ा पाप है—यह बात वह विषयलोलुप मनुष्य कैसे समझेगा ? विषयलोलुपता ही मनुष्य को विश्वासघाती बनाती है।

दूसरी बात है रुपये की, धन-दौलत की। आढ़र श्रेष्ठि की हवेली में अपार धन-दौलत थी। सेठ ने नरवीर की प्रमाणिकता को अनेक बार देखा। चूंकि नरवीर ने आढ़र श्रेष्ठि की सम्पत्ति से भी ज्यादा सम्पत्ति देखी थी ! वह पल्लीपति था न ? इसलिए उसके मन में धन-सम्पत्ति का तनिक भी मोह नहीं रहा था।

धन सम्पत्ति का मोह मनुष्य को अप्रामाणिक बनाता है। चोरी भी करवाता है। धन-सम्पत्ति का मोह, प्रगाढ़ मोह मनुष्य को विश्वासघाती बनाता है। यह दुर्गुण मनुष्य की उन्नति में अवरोधक बनता है। इस दुर्गुण से 'अन्तरायकर्म' का बन्धन होता है। जब यह कर्म उदय में आता है तब निर्धनता की, दरिद्रता की भेंट देता है। इसलिये कहता हूं कि प्रामाणिक बन कर, वफादारी को निभाते हुए जीओ। प्रामाणिकता से और वफादारी से आपकी उन्नति के पीछे उसके ये दो प्रधान गुण थे।

यशोभद्रसूरिजी एकशिला नगरी में :

और, जैसे कि नरवीर के भाग्योदय से ही आचार्य यशोभद्रसूरिजी एकशिला नगरी में पधार गये। नरवीर ने, रास्ते पर से गुजरते हुए आचार्यदेव को देखा। उसकी आंखें आनन्दित हो गई। वह सोचता है—'ये वे ही मुनिराज हैं...जो मुझे जंगल में मिले थे। मुझे उन्होंने भोजन दिलवाया था...और इस नगरी में आने की प्रेरणा दी थी। मुझ पर कितना महान् उपकार किया है इन महापुरुष ने ? मैं उनके पास जाऊंगा और उनकी सेवा करूंगा।

यह था नरवीर का दूसरा विशिष्ट गुण-कृतज्ञता। उपकारी के उपकारों को याद रखना, यह विशिष्ट गुण है। यह गुण सभी जीवों में नहीं होता है, बहुत कम जीवों में होता है। जिनकी उन्नति हो रही है, जिनका आत्मविकास हो रहा है, उनमें ही यह गुण होता है। नरवीर भविष्य के राजा कुमारपाल की आत्मा है न! नरवीर आचार्यदेव की सेवा करने का विचार करता है।

'मैं घर का काम पूरा कर, जहां गुरुदेव बिराजते होंगे वहां चला जाऊंगा और उनकी सेवा करूंगा।' नरवीर ने आचार्यदेव जिस जगह बिराजते थे वह जगह देख ली। घर का काम पूरा कर वह वहां जाने लगा और आचार्यदेव की सेवा करने लगा। आचार्यदेव ने नरवीर के जीवन-परिवर्तन से बहुत संतोष अनुभव किया। वास्तव में नरवीर का जीवन-परिवर्तन अद्भुत था। वह कितना शान्त, संतोषी और गुणवान् बन गया था! एक समय का खूंखार डाकू...आज कितना प्रशान्त होकर गुरुसेवा कर रहा था! आप कल्पना करेंगे तो ही जीवन-परिवर्तन की महत्ता ख्याल में आयेगी।

जब दिन में ज्यादा समय नरवीर घर से बाहर रहने लगा तो एक दिन आढ़र श्रेष्ठि ने पूछा: 'नरवीर, तू भोजन के बाद दोपहर में कहाँ जाता है?'

'सेठजी, अपनी नगरी में मेरे गुरु पधारे हुए हैं। उनका नाम है यशोभद्रसूरिजी। मैं उनके पास जाता हूं। उनके वचनामृतों का पान करना मुझे बहुत अच्छा लगता है।'

नरवीर की बात सुनकर आढ़र श्रेष्ठि सोचने लगे: 'मैं भी क्यों न जाऊं ऐसे सन्तपुरुष के पास? सन्तपुरुषों का धर्मोपदेश मनुष्य को शान्ति देता है। और 'साधुनां दर्शनं पुण्यम्' साधुपुरुषों के दर्शन मात्र से मनुष्य के पाप धुल जाते हैं...पुण्यकर्म प्राप्त होता है...। मैं जाऊंगा यशोभद्रसूरि के पास...।'

विवेकी मनुष्य को कल्याणमार्ग की प्राप्ति सुलभ होती है। आढ़र श्रेष्ठि विवेकी था। सन्तमागम की महिमा उसके हृदय में थी। इसलिये उसने नरवीर को उपालंभ नहीं दिया कि 'तू क्यों साधुओं के पास जाता है? क्या मिलता है वहां? घर का काम किया कर...जाना हो तो सप्ताह में एकाध दफे जाना...रोज-रोज नहीं जाना...वगैरह। नहीं ऐसी कोई बात आढ़र सेठ ने नहीं की। विवेकी था न! विवेकी मनुष्य हर बात में से अच्छाई ग्रहण करता है। उपयोगी बात ग्रहण करता है। आढ़र सेठ ने नरवीर को कहा: 'नरवीर, कल प्रात: मैं भी तेरे साथ गुरुदेव का दर्शन करने चलूंगा।' नरवीर आनन्दित हो गया।

सेठजी, आप अवश्य चलना। मेरे वे गुरुदेव चन्द्र जैसे शीतल हैं और सूर्य जैसे तेजस्वी हैं। वे ज्ञानी हैं। उनकी वाणी शक्कर से भी ज्यादा मीठी

है। उनका उपदेश सुनकर आपका हृदय आनन्द से भर जायेगा।' नरवीर अपने गुरू की प्रशंसा करते-करते गद्‌गद् हो गया। उसकी आंखें भर आयी।

आढ़र श्रेष्ठि नरवीर की गुरूप्रीति देखकर हर्षविभोर हो गये। उनका मन बोल उठा—'सच्ची शान्ति ऐसे साधुपुरूषों के संग ही प्राप्त होती हैं। आधि-व्याधि और उपाधि से भरे हुए इस संसार में अन्यत्र कहां शान्ति है? नरवीर, तू धन्य है, तू पुण्यशाली है...तुझे शान्तिदाता सद्‌गुरू मिल गये!'

आढ़र श्रेष्ठि दूसरे दिन प्रातःकाल ही नरवीर को लेकर गुरूदेव के पास पहुंच गये। गुरूदेव के दर्शन करके वे भावविभोर हो गये। नरवीर ने गुरूदेव का जो वर्णन किया था, वह वर्णन उन्हें अधूरा लगा। गुरूदेव की अद्‌भुत प्रतिभा से आढ़र श्रेष्ठि बहुत प्रभावित हो गये। उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया और विनयपूर्वक वे गुरूदेव के सामने बैठ गये।

गुरूदेव ने दोनों को 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद दिया और उनको धर्मोपदेश दिया। आचार्यदेव ने आढ़र श्रेष्ठि को अपनी ज्ञानदृष्टि से देखा। उनका भविष्य देखा। उनकी अन्तरात्मा पुलकित हो गई। उन्होंने आढ़र को लक्ष्य बनाकर धर्मोपदेश दिया। आढ़र को धर्मोपदेश अमृत समान लगा।

धर्मोपदेश पूर्ण होने पर आढ़र ने कहा: 'गुरूदेव, हम प्रतिदिन प्रातःकाल धर्मोपदेश सुनने आपकी सेवा में आया करेंगे। आज आपकी अमृतमयी वाणी सुनकर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ है। आपने मुझ पर परम कृपा की है। परम उपकार किया है।

'वत्स, तुम्हारा शुभयोदय ह कि तुम्हें जिनधर्म का उपदेश प्रिय लगा। इस मनुष्य जीवन में धर्मपुरूषार्थ को ही प्रधानता देनी चाहिये। ताकि वर्तमान जीवन और भविष्यकालीन जीवन सुखमय बने।'

आढ़र ने और नरवीर ने गुरूदेव के चरणों में वंदना की और घर लौट आये।

धर्मोपदेश-श्रवण का पहला प्रतिभाव है विगतकलमषता। यानी पापमुक्ति। आढ़र श्रेष्ठि की भी मिथ्यात्व के पाप से एवं अनन्तानुबन्धी कषायों के पाप से कैसे मुक्ति होती है, और दूसरे क्या प्रतिभाव इन दोनों पुण्यशाली जीवात्माओं में दिखायी देते हैं?

क्रमशः

महाराजा श्रेणिक

श्रीमती राजकुमारी बेगानी

पूर्वानुवृत्ति

इधर कुमार की सेना ने भी पल्ली के निकट आते ही रणभेरी बजाकर शत्रु को सावधान किया। क्योंकि वीर कभी असावधान शत्रु पर आक्रमण नहीं करते।

दोनों ओर की सेना आमने-सामने आ गयी और देखते ही देखते भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया। तलवारें चमक उठी, बरछी, भाले खनखना उठे—पैने वाणों की वर्षा ने तो सारे आकाश को ही मानो आच्छादित कर दिया। चारों ओर मारो काटो के शब्दों से दिशाएँ गूँज उठी। कुमार की सेना युद्ध विद्या में अत्यन्त निपुण थी अत: उन्होंने मूली गाजर की तरह भीलों की सेना को काटना प्रारम्भ कर दिया। भीलराज अपनी सेना को इस प्रकार तहस नहस होते देखकर स्वयं आगे बढ़े और कुमार को घेरने की चेष्टा की किन्तु कुमार अपने अंगरक्षकों के कारण पूर्ण सुरक्षित थे। बेचारे भील प्राण प्रण से अपने देश की रक्षा के लिये लड़ रहे थे। किन्तु कुमार की प्रशिक्षित सेनावाहिनी के सम्मुख टिक न सके और भाग छूटे। यहाँ तक की भील नायक भी सबकी निगाह बचा कर भाग निकला किन्तु कुमार का सेनापति उसके पीछे दौड़ा और उसे पकड़ने लगा किन्तु भीलराज भी कोई साधारण व्यक्ति नहीं था। अब तो दोनों में परस्पर युद्ध छिड़ गया, किन्तु विजयश्री किसी के भी पक्ष में नहीं जा रही थी। इसी बीच भीलराज की तलवार सेनापति की कृपाण पर पड़ते ही टूट गयी। अब भीलराज ढाल पर शत्रुओं के वार को झेलता हुआ बोला—मेरी तलवार टूट गयी है—यदि सच्चे वीर हो तो या तो मुझे दूसरी तलवार दो या बाहु युद्ध करो। सेनापति ने यह सुनकर ही अपनी तलवार दूसरी ओर फेंक दी और परस्पर एक दूसरे पर पिल पड़े। लगा जैसे दो मदमत्त गजराज एक दूसरे से जूझ रहे हों। अन्त में सेनापति गिरे हुए भीलराज की छाती पर चढ़ बैठा और बन्दी बना लिया।सेनापति भीलराज को लिये कुमार के सम्मुख उपस्थित हुआ। कुमार ने तुरन्त भीलराज को बन्धनमुक्त कर उनसे सन्धि कर ली। अब तो सवा लाख भीलों की सेना पाकर कुमार की शक्ति दुगुनी हो गयी। कहा भी गया है कि 'वीर भोग्या वसुन्धरा' वसुधा को तो वीर ही भोगते हैं। विजयी

भी बनते हैं और क्षमा कवच द्वारा अपनी सुरक्षा करते हुए वीरों का सम्मान भी करते हैं। एतदर्थ भीलराजा जैसे वीर को क्षमा कर कुमार ने उन्हें अपना अन्तरंगमित्र बना लिया।

एक विशाल भव्य अलौकिक राजमहल की सातवीं मंजिल के सुसज्जित कक्ष में दुग्ध धवल पुष्प सी कोमल शय्या पर लेटे हुए हैं मगध सम्राट। सम्मुख सामन्त मन्त्री, राजपुरुष, राजवैद्य, स्वजन सम्बन्धी सभी उन्हें घेरे बैठे हैं। सभी के चेहरों पर गम्भीर उदासी है क्योंकि यह स्पष्ट हो चुका है कि महाराज अब स्वस्थ नहीं हो सकते।

महाराज भगवान् पार्श्वनाथ के परम श्रावक थे और उन्हीं के चतुर्थ पाट पर हुए स्वयं प्रभसूरि जैसे आचार्य के सानिध्य में रह कर जैन दर्शन का अध्ययन श्रवण किया था। फिर चिरकाल पर्यन्त मगध साम्राज्य का विराट वैभव भोग कर वे अब तृप्त भी हो चुके थे। अब तो वे सतत् सद्गति के अभिलाषी थे। फिर भी मोह की पकड़ से पूर्णतया कहाँ छूट पाये थे। उनके नेत्र कक्ष के द्वार पर ही लगे थे उनके कान उदग्रीव हो रहे थे श्रेणिक के आगमन की सूचना सुनने के लिये रह-रह कर सोच रहे थे कि कुमार ने प्रधान से दृढ़तापूर्वक कहा था—आप चलें मैं शीघ्रातिशीघ्र पिताजी के चरणों में उपस्थित हो रहा हूँ। सोच रहा हूँ यदि कुमार के आने के पूर्व ही सांसे चूक गयीं तो ये अयोग्य निन्यानवे भाई अपने साथ-साथ राज्य को भी नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। देख तो रहा हूँ सभी उत्सुक और उतावले हो रहे हैं राजमुकुट की प्राप्ति के लिए। यदि कुमार आ जाते तो योग्य हाथों में राज्य की बागडोर सौंप कर मैं अपने कर्त्तव्य से मुक्त हो जाता।

और मन्त्रीगण ? राजकुमारों ने सभी को लोभ देकर अपनी ओर फोड़ लिया था। उन्हें बड़े-बड़े प्रलोभन दे रखे थे। सभी ने अपने-अपने प्रदेशों की सेना तैयार कर रखी थी। और सेनापतियों को आज्ञा दे रखी थी कि समय आते ही युद्ध का बिगुल बजाकर वे शत्रु को परास्त करें।

मन्त्रीगण राजा को बारबार यही सलाह दे रहे थे—महाराज अब आप देर न करें और अपने हाथों से ही इन निन्यानवे राजकुमारों में जो आपको योग्य लगे उसके मस्तक पर अपने हाथों से मुकुट रख दीजिये ताकि और खून खराबी का मौका न आ सके।

अब तो चारों ओर अटल शांति थी। सब महाराज का निर्णय सुनने को व्याकुल थे। तभी दूतों ने आकर सूचना दी—महाराज किसी ने हमारे राज्य पर आक्रमण कर दिया है।

सुनकर सबके हृदय धड़कने लगे, सोचने लगे—शुभ समय यह संकट कहाँ से आ पड़ा ? महामन्त्री ने पूछा—'क्या आप लोग बता सकते हैं कौन से राजा ने हम पर आक्रमण किया है।'

दूतों ने जवाब दिया—घोड़ों की हिनहिनाहट से सभी दिशाएँ गुंजित हैं अपार सेना के पैरों की उड़ती हुयी धूल से धरती और आकाश आच्छादित हो गया है—मात्र दिखायी पड़ रहे हैं विशाल दैत्य से भील—जो कि अपने अपने अस्त्रों को उठाए कर्कश ध्वनि में चिल्ला रहे हैं।'

अब मन्त्रियों ने राजकुमारों से कहा, लगता है महाराज की व्याधि से लाभ उठाकर कोई शत्रु राजगृह को हस्तगत करने सेना के साथ आ पहुँचा है। आप लोग भी अपनी सेना लेकर उसका सामना करें और शत्रु को परास्त कर नगर के नागरिकों को भयमुक्त करें।

सभी कुमार रणभेरी बजाते हुए युद्ध के लिये आगे बढ़े।

अपने सम्मुख आती हुई विशाल वाहिनी को देखकर श्रेणिक आश्चर्य में पड़ गए। तभी श्रेणिक के सुभटों और योद्धाओं ने आने वाली सेना पर आक्रमण कर तुमुल युद्ध प्रारम्भ कर दिया। भला कुमार की विशाल सेना और सुभटों के सम्मुख राजकुमार टिक ही कहाँ सकते थे—अतः इधर-उधर भागने लगे। किन्तु श्रेणिक के सुभटों ने उन्हें पकड़ कर कइयों को तो बन्दी बना लिया। कुमार व्यर्थ समय न गंवा कर पिताजी के चरणों में शीघ्र पहुँचना चाह रहे थे। यह समय कुमार के लिए अमूल्य था। वे अपने पवनवेगी अश्व पर चढ़कर राजगृह में प्रवेश कर सीधे राजमहल में पहुँचे और पिता को प्रणाम कर सभी को चकित कर दिया।

श्रेणिक कुमार को पाकर सारा शोक आनन्द में परिवर्तित हो गया। साथ ही महाराज ने अपने शूरवीर पुत्र को ऋद्धि-सिद्धि और सेना सहित आया देखकर उसे अपने प्रगाढ़ आलिंगन में ले लिया। कहने लगे—'पुत्र तूने मेरे मनोभावों को नहीं समझा और कुपित होकर घर ही छोड़ दिया। देख तेरे वियोग में हमारी क्या दशा हो गयी है। कुमार पिताजी के चरणों में गिर पड़े और पश्चाताप के आंसुओं से उनके चरणों को भिगोते हुए बोले—'पिताजी मुझे क्षमा करें। मैं आपको समझ नहीं पाया किन्तु फिर भी जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ। आप ही की कृपा से मुझे भी तो मेरे भाग्य, बल और वृद्धि को परखने का अवसर मिला। धन्य हैं मेरे निन्यानवे भाइयों को जो निरन्तर आपकी सेवा में संलग्न रहे और मैं युवावस्था की उद्दण्डतावश अपने कर्तव्य को ही भूल बैठा था—क्षमा करें—पिताजी क्षमा करें।

महाराज ने अपार आनन्द से गद्गद् बने कण्ठ से कहा—पुत्र शान्त हो जा। तेरा पश्चाताप मेरी भक्ति का सूचक है। किन्तु तूने कभी अपना कुशल समाचार भी नहीं भिजवाया ये तो देवनन्दी सार्थवाह से तेरा पता लगा—किन्तु परम आश्चर्य है कि मुझसे लड़ने के लिये सेना क्यों भेजी गयी थी ? कुमार ने पूछा ?—महामन्त्री ने श्रेणिक के सम्मुख परिस्थिति को स्पष्ट किये बोला, युवराज श्रेणिक हम लोगों ने समझा कोई अन्य राजा ने महाराज की बीमारी से लाभान्वित होना चाहकर हमारे देश पर आक्रमण कर दिया है। सब कुछ सुनकर कुमार भी अब अपने भाइयों को बन्धन मुक्त करवाया। सभी कुमारों ने आकर श्रेणिक को प्रणाम किया। सभी उसके शौर्य उसकी समृद्धि और वैभव को देखकर आश्चर्य चकित थे। ठीक ही तो कहा है—पूत, कपूत तो क्या धन संचय। अर्थात् पुत्र के लिए धन संचय व्यर्थ है—कपूत संचय किये धन को बुरे कार्यों में नष्ट कर सकता है और सपूत वह तो दरिद्र घर को भी अपनी बल-बुद्धि और पराक्रम से ऋद्धिवन्त बना सकता है।

महाराज प्रसेनजित ने कहा—'पुत्र मैंने पहले भी तेरी परीक्षा ली थी और अब भी ले रहा हूँ मुझे सब प्रकार से तू ही मगध के राज्य सिंहासन के योग्य लगा है। अब तू मेरी इस अन्तिम इच्छा को पूर्ण कर।

'कौन सी इच्छा पिताजी ?'

यही कि इस राजमुकुट को पहन कर मगध के राज्यभार को ग्रहण कर। ताकि मैं सभी चिन्ताओं से मुक्त होकर आत्मसाधना में लग सकूँ'—राजा ने कहा।

महाराज यह राजमुकुट तो मेरे निन्यानवे भाईयों में से कोई भी ग्रहण कर सकता है। मुझे तो अब आपके चरणों की सेवा का सद्अवसर देकर अपनी भूल के लिए पश्चाताप करने का अवसर प्रदान करें' कुमार ने बड़ी ही श्रद्धा भक्ति पूर्वक निवेदन किया।

'नहीं पुत्र अब अधिक समय नहीं है। किन्तु मृत्यु के पूर्व मैं तुझे राज्य धर्म समझाना चाहता हूं 'राजा को महामन्त्री, सेनापति, सामन्त यहां तक कि छोटे-छोटे सैनिकों को भी अपने समान समझना चाहिये। शत्रुओं से युद्ध के समय विपद इन्हीं के द्वारा मिलती है। अर्थात् सेना को तो सदैव संतुष्ट रखना चाहिये।

इसी प्रकार मन्त्री और अधिकारी वर्ग को भी सदैव प्रसन्न रखना चाहिए। राज्य तो इन्हीं की विलक्षण सूझ-बूझ से चलता है। इनके परामर्श को ध्यान-पूर्वक सुनकर ही कोई कदम उठाना चाहिये। और प्रजा उसे तो पुत्रवत् ही समझना चाहिए। उसके हर प्रकार के कष्टों को दूर करने में सदैव तत्पर रहना चाहिए। प्रजा सुखी होगी तभी राजा भी दीर्घकाल तक सुखी रह सकता

है। दुष्ट, दुर्जन शठ, धूर्त एवं दुराचारियों को दण्ड देकर सज्जन, सन्त-सदाचारी व्यक्तियों की रक्षा करना राजा का परम कर्तव्य है। साथ ही अनाथ गरीब, दुखी, पीड़ितों एवं आर्तजनों की सहायता करके उनका आशीर्वाद सदैव ग्रहण करते रहना। राज्य में विद्या, उद्योग एवं ललित कलाओं को बढ़ाने का सदैव ध्यान रखना।

पिता से उपदेश ग्रहण कर, उन्हें आश्वस्त कर कुमार अपनी माता धारिणी के चरणों में उपस्थित हुए। कुमार को देखते ही आनन्द से पुलकित हो रानी ने उन्हें आशीर्वादों की भीनी फुहारों से भिगा डाला। कुमार ने इसी भाँति विनयपूर्वक अन्य सौतेली माताओं को भी प्रणाम कर सबका आशीर्वाद ग्रहण किया।

अब श्रेणिक के राज्याभिषेकका समय आ गया। चारों ओर मंगलवाद्य बजने लगे। शहनाइयों के मधुर स्वर में नीरसता जैसे एक बारगी ही समाप्त हो गयीं स्त्रियों के मंगलगान से सारा राजमहल ध्वनित हो उठा। राजपथों पर सुन्दर तोरण बंधवाये गए। विभिन्न रंगों के पुष्पों से प्राचीरों को सजाया गया। चतुर्दिक सुगन्धित जल का छिड़काव किया गया। नए राजा की सवारी निकाल कर राजगृह की प्रजा का अपने राजा के चन्द्रवदन को देखने का मानो इस बहाने सुअवसर दिया गया। भूखों को भोजन खिलाया जा रहा था। दरिद्रों को अन्न-वस्त्र औषध वितरण की जा रही थी। सभी को हर प्रकार से प्रसन्न करने का प्रयत्न किया जा रहा था।

महाराज ने महामन्त्री की ओर देख कर कहा—अब आप तुरन्त ज्योतिषियों को बुलवाइये और राज्याभिषेक का मुहूर्त निकलवाइये।

अन्ततः एक शुभ दिन युवराज श्रेणिक का राज्याभिषेक किया गया। अब वे युवराज से सम्राट बन गए थे। सभी ने करतल ध्वनि से इस शुभ कार्य का समर्थन किया। राजगद्दी पर बैठने के पश्चात् वे भम्भासार के नाम सेप्रसिद्ध हो गए किन्तु ऐतिहासिक परम्परा ने उस नाम को बदलकर बिम्बसार कर दिया।

राजमुकुट धारण करने के पश्चात् कुमार ने अपने मन्त्रीमण्डल का निरीक्षण किया। अयोग्यों के स्थान पर योग्य को नियुक्त कर राज्य की व्यवस्था को और अधिक सुन्दर और दृढ़ बनवाया।

इस शुभ अवसर पर श्रेणिक ने भीलराज को भी स्वतन्त्रकर अपने देश लौट जाने को कहा। किन्तु अपनी पराजय से लज्जित भीलराज अपने पुत्र को राज्य सौंप कर स्वयं तपस्या करने चला गया। इतना ही नहीं जिन-जिन सामन्तों ने श्रेणिक का अनादर किया था उनको भी अपने बुद्धि कौशल से प्रसन्नकर अपना लिया। अब तो राज्य में सर्वत्र सुख, शांति, उत्साह और उमंग का ही बोलबाला था सभी अपने नवीन राजा से अत्यन्त खुश थे।

क्रमशः

संकलन

बिना ज्ञान के सुख-दुख दोनों में आर्त्तध्यान

आत्मज्ञान और समभाव हो, तो परिस्थिति बदल जाएगी। सुख और दुःख दोनों कर्मबन्धन के हेतु न होकर, कर्म-निर्जरा के हेतु बन जाएंगे। आत्म-ज्ञान नहीं होने पर दुःख तो आर्त्तध्यान का कारण बनता ही है, किन्तु सुख भी आर्त्तध्यान का कारण बन जाता है। 'आर्त्तध्यान शब्द जाना-पहचाना है। आप सामायिक, प्रतिक्रमण में कायोत्सर्ग के बाद बोलते हैं—आर्त्तध्यान, रौद्र-ध्यान ध्याया हो, धर्मध्यान शुक्लध्यान न ध्याया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं क्या है आर्त्तध्यान ? मनोज्ञ वस्तु के संयोग का चिंतन करना और अमनोज्ञ वस्तु के वियोग का चिन्तन करना आर्त्तध्यान है।

मनोज्ञ का चिन्तन कैसे ? यदि मनोज्ञ वस्तु या वस्तुएँ पास में है तो वे कहीं दूर न चली जाए—ऐसा चिन्तन आर्त्तध्यान है। उपलब्ध मनोज्ञ वस्तुओं की रक्षा के लिए अनेक उपाय किये जाते हैं। चिन्ता है रूप चला न जाए तो सौन्दर्य प्रसाधन काम में लेना, वैद्य हकीमों के बताए उपायों पर चलना, धूप में नहीं बैठना कि कहीं गोरा रंग काला न हो जाए। यह सब क्या है ? यह है उपलब्ध मनोज्ञ के रक्षण की चिन्ता। मनोज्ञ वस्तुएँ नहीं होने पर उन्हें प्राप्त करने की लालसा भी इसी आर्त्तध्यान में आती है। अमनोज्ञ आपके पास न रहे इसकी भी आपको चिन्ता है। दुख कैसे दूर हो ? दुःख कैसे आपके पास नहीं फटकें ? इन सबका अज्ञानपूर्वक चिन्तन आर्त्तध्यान ही है।

—आचार्य श्री हीराचन्द्रजी महाराज

साभार-जिनवाणी, फरवरी १९९६

स्व० नरेन्द्र सिंह जी बैद
की पुण्य स्मृति में

–मीरा बैद
८३-बी, विवेकानन्द रोड,
कलकत्ता-७००००६
फोन : २४१-०७१९

छोटा सा बीज ही वट-वृक्ष बनता है

प्रभु की प्रार्थना एवं सन्तों के दर्शन से प्रारम्भ में चाहे दो मिनिट ही शान्ति की अनुभूति हो किन्तु वह शांति भी बीज रूप होती है, जिसे नियमित खाद्य मिले तो वह बीज भी एक दिन विशाल वटवृक्ष का रूप ग्रहण कर लेता है। यदि अंकुर टिकता है तो वह पल्लवित भी होगा। परन्तु जिस दिन बीज बोया और उसी दिन कोई देखे कि वह अंकुरित हुआ और पल्लवित पुष्पित व फलित हुआ या नहीं तो वैसा अधैर्य साथ नहीं देता है। बुद्धि की चंचलता यदि इस तरह चले तो उससे संशय पैदा होता है तथा संशय से कोई भी कार्य नहीं बनता है। बुद्धि बार-बार फल को कुरेदने की कुचेष्टा करती रहे और फल के लिये किये जाने वाले श्रम में एकाग्र नहीं बने तो फल की प्राप्ति संभव नहीं बनेगी। कार्य करने को कर्त्तव्य माना जाय और फल को भूल जांय तो फल की प्राप्ति सुनिश्चित समझिये।

निश्चल धैर्य के साथ प्रार्थना और साधना करते रहने से जीवन में सुन्दर संस्कार ढलते रहते हैं और ये संस्कार ही जब आत्मा को पवित्र आचरण की ओर ले जाते हैं, तब प्रार्थना का छोटा सा बीज एक दिन महान् सुख सम्पत्ति और शान्ति के वट वृक्ष के रूप में पल्लवित होकर परमात्म पद का 'अक्षय फल प्रदान करता है।

आज भी आप जब प्रार्थना में पहुँचते हैं तो सन्त लोग कुछ त्याग का संकेत देते हैं। आप सोचते होंगे कि छोटी-छोटी बातों का त्याग करने से क्या होता है किन्तु गहराई से देखें तो यह शुभ लक्षण है। छोटे-छोटे त्याग से ही मनुष्य महान् त्याग करना सीखता है। पहली सीढ़ी पर चढ़कर ही ऊपर की मंजिलों में पहुंचा जा सकता है। ऐसे संस्कार ही परम्परा की शृंखला में बन्धकर जीवन को विराट् बनाते हैं।

—आचार्य श्री नानेश

साभार : श्रमणोपासक—जून १९९६

सौजन्य से :

BOYD SMITHS PVT. LTD.

B-3/5, GILLANDAR HOUSE

8, Netaji Subhas Road,

Calcutta-700 001

Phone Office : 220-8105/2139

Resi. : 244-0629/0319

श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र

WB/NC-330

Vol. XX No. 2 **TITTHAYARA** **June 1996**

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77